[६]

तपोमार्ग की शास्त्रीय साधना

पंचम गणधर श्री सुधर्मास्वामी जम्बू से कहते हैं:—

जहा उ पावगं कम्मं, राग दोस समज्जियं ।
खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण ।।१।।

अय जम्बू ! राग-द्वेष से संचित पाप कर्म को तपस्या के द्वारा मुनि किस प्रकार खपाता-नाश करता है, इसकी मैं विधि कहूँगा, जिसको तू एकाग्र मन से श्रवण कर ।

तप करने वाले को आस्रव त्याग का ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि बिना आस्रव त्याग के कर्म का जल निरन्तर आता रहेगा और जब तक नये कर्म निरन्तर आते रहेंगे, उनको खपाने की क्रिया का खास लाभ नहीं होगा, इसलिये शास्त्र में कहा है :—

पाणिवह-मुसावाया, अदत्त-मेहुणा-परिग्गहा विरओ ।
राइ भोयण-विरओ, जीवो हवइ अणासवो ।।२।।

जो साधक हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्यागी एवं रात्रि-भोजन से विरत होता है, वह आस्रव रहित हो जाता है, इसलिए उसके कर्म-जल का आगमन रुक जाता है । फिर अनास्रव की दूसरी स्थिति बतलाते हैं :—

पंच समिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइंदिओ ।
आगारवो य निस्सल्लो, जीवो हवइ अणासवो ।।३।।

जो ईर्या आदि पाँच समितियों से युक्त और मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियों से गुप्त होता है, क्रोधादि कषाय रहित और जितेन्द्रिय है । ऋद्धि, रस और साता रूपगौरव का जो त्यागी और निश्शल्य होता है, वह आस्रव रहित होता है ।

एएसिं नु विवच्चासे, रागदोस समज्जियं ।
खवेइ उ जहा भिक्खू तमेगग्गमणो सुण ।।४।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके विपरीत हिंसादि से अविरत रहने पर जीव आस्रव से राग द्वेष के कारण कर्म का संचय करता है। उस संचित कर्म को भिक्षु जिस प्रकार नष्ट करता है, उसे एकाग्र मन होकर मेरे पास श्रवण करो।

जहा महातलागस्स, सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिं चणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥५॥

पहले दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं—जिस प्रकार किसी बड़े तालाब के जलागम द्वार रोकने पर, सिंचाई और ताप के द्वारा क्रमशः सारा पानी सूख जाता है, भूमि निर्जल हो जाती है।

एवंतु संजयस्सावि, पावकम्म निरासवे।
भव कोडी सचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ॥६॥

तालाब की तरह संयमी आत्मा के भी पाप-कर्म का आस्रव रुक जाने पर करोड़ों जन्मों का संचित कर्म तपस्या से निर्जीण हो जाता है अर्थात् तपस्या के द्वारा जन्म-जन्मान्तर के भी संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं।

अब तप के प्रकार कहते हैं :—

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥७॥

पूर्वोक्त गुण विशिष्ट वह तप दो प्रकार का कहा गया है, यथा—बाह्य तथा आभ्यन्तर। बाह्य तप छः प्रकार का है ऐसे आन्तर तप भी छः प्रकार का कहा गया है। भौतिक पदार्थों के त्याग से शरीर एवं इन्द्रिय पर असर करने वाला बाह्य तप और मन जिससे प्रभावित हो, उसे आन्तर तप समझना चाहिये। दोनों एक दूसरे के पूरक होने से आवश्यक हैं। प्रथम बाह्य तप का विचार करते हैं :—

अणसण-मूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥८॥

प्रथम अनशन-आहार त्याग, २. ऊनोदर-आहार आदि में आवश्यकता से कम लेना, ३. भिक्षाचरिका, ४. मधुरादि रस का त्याग, ५. कायक्लेश-आसन, लुंचन आदि ६. संलीनता-इन्द्रियादिक का गोपन इस प्रकार बाह्य तप छः प्रकार का होता है।

प्रत्येक का भेद पूर्वक विचार :—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इत्तरिय मरणकाला य, अणसणा दुविहा भवे ।
इत्तरिय सावकंखा, निरवकंखा उ विइज्जिया ॥९॥

अनशन के इत्वर-अल्पकालिक और मरणकाल पर्यन्त ऐसे दो भेद होते हैं। इत्वर-तप सावकांक्ष होता है, नियतकाल के बाद उसमें आहार ग्रहण किया जाता है, पर दूसरा निरवकांक्ष होता है, उसमें जीवन पर्यन्त सम्पूर्ण आहार का त्याग होता है।

इत्वर तप के भेद :—

जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छब्बि हो ।
सेढितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥१०॥

इत्वर तप संक्षेप से छः प्रकार का है, जैसे—१. श्रेणि तप (उपवास आदि क्रम से छः मास तक), २. प्रत्तर तप, ३. घन तप, ४. तथा वर्ग तप होता है।

तत्तो य वग्गवग्गो, पंचमी छट्ठओ पइण्णतवो ।
मणइच्छियचित्तत्थो, नायव्वो होय इत्तरिओ ॥११॥

फिर पाँचवाँ वर्ग तप और छठा प्रकीर्ण तप होता है, इस प्रकार इत्वर तप, साधक की इच्छा के अनुकूल और विचित्र अर्थ वाला समझना चाहिये। इससे लोक एवं लोकोत्तर के विविध लाभ होते हैं।

मरणकाल :—

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया ।
सवियार मवियारा, कायचिट्ठं पइ भवे ॥१२॥

मरणकाल में जो अनशन किया जाता है, वह दो प्रकार का कहा गया है—काय चेष्टा को लेकर एक सविचार और दूसरा अविचार-चेष्टा रहित होता है।

प्रकारान्तर से अनशन को समझाते हुए कहा है :—

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया ।
नीहारिमनीहारी, आहारच्छेओ दोसु वि ॥१३॥

आजीवन अनशन प्रकारान्तर से दो प्रकार का—सपरिकर्म और अपरिकर्म रूप से कहा गया है। शरीर की उत्थान आदि क्रिया और जिसमें सम्भाल की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जाय वह सपरिकर्म और दूसरा काय चेष्टा रहित अपरिकर्म होता है। डाल की तरह अपरिकर्म वाला शरीर से निश्चल रहता है। व्याघात एवं निर्व्याघात की दृष्टि से भी इनके भेद होते हैं। नीहारी और अनिहारी दोनों प्रकार के अनशन में आहार का त्याग होता ही है। अनशन करने का सामर्थ्य नहीं हो, उसके लिए दूसरा तप ऊनोदर बतलाते हैं :—

ओमोयरणं पंचहा, समासेण वियाहियं।
दव्वओ खेत्तकालेणं, भावेण पज्जवेहिय ।।१४।।

दूसरा तप अवमोदर्य संक्षेप में पांच प्रकार का कहा गया है, यथा (१) द्रव्य अवमोदर्य (२) क्षेत्र अवमोदर्य (३) काल अवमोदर्य (४) भाव अवमोदर्य और (५) पर्यवअवमोदर्य।

इनका विशेष स्पष्टीकरण कहते हैं :—

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तू जो करे।
जहन्नेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ।।१५।।

जिसका जितना आहार हो, उसमें कुछ कम करना जघन्य एकसीत घटाना आदि—यह द्रव्य से अवमोदर्य है। अपनी खुराक में एक ग्रास भी कम किया जाय, तो वह तप है। कितना सरल मार्ग है।

क्षेत्र आदि से अवमोदर्य का विचार करते हैं :—

गामे नगरे तंह रायहाणि, निगमे य आगरे पल्ली।
खेडे कब्बड-दोणमुह, पट्टण-मडम्ब-संवाहे ।।१६।।

ग्राम, नगर तथा राजधानी में निगम—व्यवसायियों की मंडी, आकर और पल्ली में, खेड—जो धूलि के कोट से घिरा हो, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन और मंडव में क्षेत्र की मर्यादा करके भिक्षा जाना।

आसमपए विहारे, सन्निवेसे समायघोसे य।
थलिसेणाखन्धारे, सत्थे संवट्टकोट्टे य ।।१७।।

आश्रम पद—तापस आदि का आश्रम, विहार, सन्निवेश और घोष आदि स्थानों में नियत मर्यादा से भिक्षा लेना भी अवमोदर्य है, जैसे :—

वाडेसु व रत्थासु व, घरेसु वा एवमित्तियं खेत्तं।
कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण उ भवे ।।१८।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चारों ओर से भित्ति से घिरे हुए बाड़े में, गली या घरों में इतने क्षेत्र में भिक्षा मिले तो लेना, इत्यादि प्रकार से क्षेत्र अवमोदर्य होता है।

फिर प्रकारान्तर से बतलाते हैं :—

पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्ति पयंग-वीहिया चेव।
सम्बुक्कावट्टागन्तु, पच्चागया छट्ठा ॥१९॥

पेटी के समान चतुष्कोण गृह समूह में भिक्षा करना इसकी पेटा, अर्ध चतुष्कोण में भ्रमण करना अर्ध पेटा, वाम से दक्षिण और दक्षिण से वाम इस प्रकार वक्रगति से भिक्षा करना गोमूत्रिका और पतंग की तरह कुछ घर छोड़ कर दूसरे घर में भिक्षा करना पतंग वीथिका, शंख के समान आवर्तवाली शंखावर्त भिक्षा, वृत्ताकार भ्रमण वाली भिक्षा, और लम्बे जाकर पीछे आते हुए लेना यह छठे प्रकार की भिक्षा है।

अब काल तथा भाव अवमोदर्य का विचार करते हैं :—

दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्हंपि उ जत्तिओ भवे कालो।
एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वं ॥२०॥

दिन के चारों पौरुषी में जितने काल का अभिग्रह किया है, उसके अनुसार नियत समय में भिक्षा करना काल अवमोदर्य समझना चाहिये। फिर—

अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घाससेसन्तो।
चऊ भागूणाए वा, एवं कालेण ऊ भवे ॥२१॥

प्रकारान्तर से कहते हैं:— तीसरे पौरुषी के कुछ कम रहते अथवा चतुर्थ भाग शेष रहने पर भिक्षा करना काल अवमोदर्य कहा गया है। अभिग्रही का नियम होता है कि नियत द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव के अनुसार भिक्षा मिले तो ही ग्रहण करना अन्यथा नहीं—अतः यह तप है।

भाव अवमोदर्य का स्वरूप कहते हैं:—

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वा नलंकिओ वावि।
अन्नयरवयत्थो वा, अन्नयरेणं व वत्थेणं ॥२२॥

स्त्री हो अथवा पुरुष, अलंकृत हो या अलंकार रहित हो, बाल्य-तरुणादि किसी वय और श्वेत-पीतादि अन्यतर वस्त्रधारी हो।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्नेण विसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयन्ते उ ।
एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्वं ।।२३।।

इस प्रकार अन्य भी वर्णादि विशेषों में अमुक प्रकार से मिले तो ही लेना, इस रूप से भिक्षा करना भाव अवमोदर्य कहलाता है । भाव अवमोदर्य और पर्यव अवमोदर्य का भेद दिखाते हुए कहते हैं:—

दव्वे खेते काले, भावम्मि य आहिया उजे भावा ।
एएहिं जोमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ।।२४।।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो एक ग्रास आदि कहे गये हैं, उन द्रव्यादि सब पर्यायों से अवम चलने वाला साधक पर्यवचरक होता है ।

अट्ठविहगोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरियमाहिया ।।२५।।

आठ प्रकार की गोचरी तथा सात प्रकार की एषणाएँ, इस प्रकार अन्य जो अभिग्रह किये जाते हैं, उसको भिक्षाचरिका रूप तप कहते हैं । इसका दूसरा नाम वृत्ति संक्षेप भी है ।

खीरदहिसप्पिमाई, पणीयं पाण भोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ।।२६।।

दूध, दही, घृत आदि रसों को प्रणीत पान भोजन कहते हैं, इस प्रकार विभिन्न रस का त्याग रसवर्जन नाम का तप कहा गया है ।

ठाणावीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति, कायकिलेसं तमाहियं ।।२७।।

वीरासन आदि जो साधक को सुखद हो वैसे आसन से स्थिर रहना और केश लुंचन आदि उग्र कष्टों को समभाव से धारण करना, इसको कायक्लेश तप कहा गया है ।

अब प्रतिसलीनता का विचार करते हैं:—

एगन्त मणावाए, इत्थी-पसु-विवज्जिए ।
सयणासण सेवणया, विविक्त सयणासणं ।।२८।।

स्त्री पशु आदि रहित एकान्त और स्त्री आदि का गमनागमन जहाँ नहीं हो, वैसे स्थान में शयनासन करना विविक्त शय्यासनरूप तप होता है । इन्द्रिय-कषाय और योग संलीनता के भेद से इसके अन्य प्रकार भी होते हैं ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एसो बाहिरग्गतवो, समासेण वियाहिओ।
अब्भिन्तरं तव एत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ।।२९।।

इस प्रकार पूर्वोक्त छः प्रकार का संक्षेप में बाह्य तप कहा गया है, अब आन्तर तप की कहूँगा, हे जम्बू ! अनुक्रम से श्रवण करना।

प्रथम नाम बता रहे हैं:—

पायच्छितं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउसग्गो, एसो अब्भितरो तवो ।।३०।।

१. प्रायश्चित, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान और ६. व्युत्सर्ग, ये आन्तर तप के ६ भेद हैं।

आलोयणा रिहाईयं, पायच्छितं तु दसविहं।
सं भिक्खू वहई सम्म, पायच्त्तिं तमाहियं ।।३१।।

प्रायश्चित दस प्रकार के हैं—आलोचना, प्रतिक्रमण आदि। आत्म-शुद्धि के लिए जिस अनुष्ठान का भिक्षु सम्यक् वहन करे उसको प्रायश्चित कहते हैं।

विनय तप का वर्णन करते हैं:—

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं।
गुरुभत्तिभावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ।।३२।।

गुरु आदि के आने पर अभ्युत्थान करना, अंजलि जोड़ना, आसन प्रदान करना तथा गुरु की भक्ति और भावपूर्वक सुश्रूषा यह विनय नाम का तप है।

आयरिय माईए, वैयावच्चम्मि दसविहे।
आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ।।३३।।

आचार्य आदि दस प्रकार की वैयावच्च में शक्ति के अनुसार आहार-दान आदि संपादन करना, इसको वैयावच्च कहते हैं। विनय और वैयावृत्य की शुद्धि के लिये ज्ञान की आवश्यकता रहती है, इसलिये वैयावृत्य के पश्चात् स्वाध्याय कहते हैं। यह भाव सेवा भी है।

स्वाध्याय के प्रकार:—

वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा।
अणुप्पेहा धम्म कहा, सज्जाओ पंचहा भवे ।।३४।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१. वाचना—शास्त्र आदि की वाचना देना अथवा लेना, २. पृच्छा—अज्ञात विषय में पूछना तथा पठित का आवर्तन करना, ३. अनुपेक्षा, ४. मनन और ५. धर्म कथा, इस प्रकार स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है। स्वाध्याय शुभ ध्यान का आलम्बन है, अतः स्वाध्याय के बाद ध्यान कहा जाता है:—

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु वुहा वए ।।३५।।

आर्त एवं रौद्र ध्यान को छोड़कर उत्तम समाधि वाला साधक धर्म और शुक्ल ध्यान का चिन्तन करे, ज्ञानियों ने इसको ध्यान तप कहा है।

अन्तिम आभ्यन्तर तप व्युत्सर्ग है, इसका स्वरूप निम्न प्रकार है :—

सयणासणठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ।।३६।।

बैठने, खड़े रहने या सोने में जो साधक किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करे, यह छठा काय का व्युत्सर्गरूप तप कहा गया है।

सामान्य रूप से द्रव्य और भाव, व्युत्सर्ग के दो प्रकार हैं। द्रव्य व्युत्सर्ग चार प्रकार का है— १. गण, २. देह, ३. उपधि और ४. भक्त पान। भाव में क्रोध-मान-माया-लोभ का त्याग करना भाव व्युत्सर्ग है। इस प्रकार बाह्य और आन्तर तप को मिला कर १२ भेद होते हैं।

तपस्या का वर्णन करके अब सुधर्मा स्वामी म० इसका उपसंहार कहते हैं:—

एवं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी।
सो खिप्पं सव्व संसारा, विप्प मुच्चइ पण्डिओ ।।३७।।

इस प्रकार बाह्य और आन्तर रूप दो प्रकार के तप को जो मुनि सम्यग् प्रकार से आराधन करता है, वह पण्डित मुनि नरकादि चतुर्गति रूप संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। अर्थात् कर्म क्षय हो जाने से उसको फिर जन्म-मरण के चक्र में आना नहीं पड़ता है। हे जम्बू ! मैं कहता हूँ कि यही कल्याणकारी शुद्ध तप का मार्ग है।

□ □ □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org